बातचीत के तरीक़े

निशा कौशल

बातचीत दो तरह से हो सकती है – एक, जिस में सवाल–जवाब होते हैं, और दूसरी जिस में सवाल–जवाब नहीं होते। जब हम सवाल–जवाब में बातचीत करते हैं, तो हम एक दायरा–सा बना लेते हैं, एक टारगेट चुन लेते हैं, और उस की तरफ़ बढ़ते हुए बातचीत करते हैं। सवाल–जवाब के बिना बातचीत में सजेशन पर सजेशन निकलते रहते हैं, और बातचीत चलती रहती है। आप दायरा नहीं बनाते, और अपने आप को खोलना पड़ता है।

रिश्ते

नीलोफ़र

हमारा हर इंसान से अलग रिश्ता होता है। हम ये कहते हैं कि "हम अपने परिवार से बहुत प्यार करते हैं"। ये महज़ एक लाइन है। फ़ैमिली में अगर दस लोग हैं, उन सबसे हमारा अलग–अलग रिश्ता होता है। शायद एक–दूसरे से कुछ मिलता हुआ, या एक–दूसरे से विपरीत। रिश्तों को नाम देकर आसान हो जाता है एक साथ रहना। एक–दूसरे को भूलना, एक–दूसरे पर हक़ जताना। पर क्या जिस रिश्ते का जो नाम है, उस रिश्ते में वो ही सब है, या नहीं?

दुनिया में आने से पहले ही हम रिश्तों के नामों से लदे होते हैं। पर उन रिश्तों को बनाना, बिगाड़ना, उनसे जूझना, उनको समझना या समझकर भी न समझ पाना, रिश्तों को खोजना हमारा काम है। हर रिश्ते में कुछ न कुछ बहता है, तो कुछ ठहर जाता है। काफ़ी रिश्तों के तो नाम भी नहीं होते, पर वो रिश्ते होते हैं। कभी–कभी रिश्ते कब बनते हैं, पता ही नहीं चलता। जैसे अभी हाल ही की बात है। एक लड़की, जिसका क़द साढ़े तीन फुट होगा, रंग गोरा है। सीधे बालों को तेल लगा कर, कसके, डबल करके लाल रिबन से चुटिया बाँधती है। आठ–दस दिन से जब भी शाम को हम टीवी खोलते हैं तो वो लड़की आ जाती है।

वैसे तो हमारा टीवी दिन में भी चलता है। सुबह आठ बजे मेरा सबसे छोटा भाई रिहान टीवी खोल लेता है और कार्टून नेटवर्क लगा कर देखता है। उसको कार्टून देखने के लिए सुबह आठ बजे उठना पड़ता है, और नौ बजे तक देखता है। इस बीच कोई भी किसी दूसरे चैनल पर नहीं लगा सकता, वरना वो रोने लगता है। और वैसे भी अम्मी, पापा और रिहान को छोड़कर हम तीनों – मेरी बहन शाज़िया, बड़ा भाई रिज़वान और मैं – सो रहे होते हैं। उसके कार्टून की आवाज़ सुनकर ही आँख खुलती है। लगता है जैसे वो अलार्म घड़ी का काम करता है। फिर सवा नौ बजे मेरा बड़ा भाई रिज़वान टीवी बंद करके डैक चलाता है और वो झंकार वाले और धमक वाले गाने ख़ूब तेज़ आवाज़ में सुनता है। इस बीच नाश्ता करके, कपड़े बदलकर, लगभग दस बजे तक काम पर चला जाता है। फिर मैं टीवी खोलती हूँ और नई फ़िल्म के ऐड, गाने, एलबम साँग सुनती हूँ। दस या सवा दस बजे तक टीवी बंद करके कंप्यूघर आ जाती हूँ। फिर हमारा टीवी दोपहर में चलता है। हमारी अम्मी को 'कुमकुम', 'भाभी' वग़ैरह देखने का शौक़ है।

दोपहर में भी रिहान टीवी खोलकर दो से तीन बजे तक कार्टून देखता है। इस बीच भी कोई कुछ नहीं देख सकता। जब शाम को मैं जाती हूँ, तो कभी टीवी खुला होता है, शाज़िया फ़िल्म देख रही होती है, तो कभी बंद होता है। फिर सात बजे खुलता है। सात बजे सब 'कुमकुम' देखते हैं। पापा भी सात बजे तक काम पर से आ चुके होते हैं। पापा को 'अलिफ़–लैला' देखने का शौक़ है। इसलिए साढ़े सात बजे पापा के डर से मजबूरी में सबको 'अलिफ़–लैला' देखना पड़ता है। पापा 'अलिफ़–लैला' और 'आज तक' देखते हैं, और 'स्टार न्यूज़' पर ख़बरें सुनते हैं। पर आजकल उन्हें 'काँटा लगा...' गाना अच्छा लगता है। वरना सबको 'शाका लाका बूम–बूम' अच्छा लगता है। आठ बजे से प्रोग्राम 'सोनपरी', 'खिचड़ी', 'कृष्ण अर्जुन'। ये सब शाज़िया को अच्छे लगते हैं। मगर साढ़े आठ बजे तो 'कसौटी' पर से कोई नहीं हटता। सबको ये नाटक अच्छा लगता है। इस बीच वो लड़की भी हमारे दरवाज़े पर खड़ी रहती है। नाटकों के अहसासों को अपने अंदर महसूस करके कभी मुस्कुराती, तो कभी सीरियस हो जाती, तो कभी हँसती है।

दस–साढ़े दस बजे तक स्टार प्लस लगा रहता है। फिर बड़ा भाई रिज़वान बाहर दोस्तों में से आकर सोनी पर लगा देता है, 'आहट' देखने के लिए। मुझे इस बात पर

बहुत गुस्सा आता है, क्योंकि वो मुझे 'सास भी कभी बहु थी' नहीं देखने देता। आठ–दस दिन से वो लड़की रोज़ सात बजे आ जाती है। और ग्यारह बजे तक अपने घर नहीं जाती है। कभी–कभी साढ़े ग्यारह बज जाते हैं। अगर हम टीवी बंद कर दें, या लाइट चली जाए, तो वो चली जाती है। शुरु–शुरु में तो किसी ने कुछ नहीं कहा। फिर तीन–चार दिन हो गए तो अम्मी कहने लगीं, "बताओ, कैसी अम्माएँ हैं जो ग्यारह–बारह बजे तक अपनी बच्ची की ख़बर नहीं लेतीं। हम तो दस बजे तक अपने लड़कों को भी बाहर से घेर कर के ले आते हैं। और इनको लड़कियों का भी पता नहीं। भैया, बहुत लापरवाह है"। फिर अम्मी ने उससे उसके घर का पता पूछा। उस लड़की ने दुल्हा वाली गली में बताया।

मैं उससे अंदर आने को कहती, तो वो सिर हिलाकर शुक्रिया के अंदाज़ में मना कर देती। फिर अम्मी भी कहतीं, तो वो अंदर आ जाती और डर–डर कर बैठती। लगता था ज़मीन पर नहीं, बल्कि रुई पर बैठी है। बार–बार अपने आप को संभालती। पर उसकी नज़र टीवी पर ही रहती। प्रोग्राम के बीच में ऐड आते तो मैं चैनल बदलती, पर उसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। उसे तो सिर्फ़ टीवी देखने से मतलब है।

दो–तीन दिन पहले पापा रसभरी लाए थे। साढ़े आठ–पौने नौ बजे का टाइम था। हम सब 'कसौटी' देखते हुए रसभरी खा रहे थे। पापा, अम्मी, मैं और शाज़िया घर में थे, पर दोनों भाई बाहर थे। तो अम्मी ने उस लड़की को भी रसभरी दी। पर वो मना करने लगी। पर अम्मी ने ज़बर्दस्ती उसको दी। उसने ले ली और खा ली। अब कभी–कभार अम्मी उससे पूछती हैं, "तेरी अम्मी ने क्या पकाया? तेरी अम्मी कौन है? तू कौन–सी क्लास में पढ़ती है?" वग़ैरह–वग़ैरह....

उस लड़की से हमारा एक रिश्ता बन गया है, जो रिश्ता टीवी के ज़रिए जुड़ा है। उसके और हमारे इस रिश्ते के बीच नाटकों की कहानी बहती है, जिसमें अहसास घुलते हैं। उस लड़की और हमारे बीच इतनी बातचीत नहीं होती। बस मैं या अम्मी ही उससे अंदर आने को कहते है। और हम दोनों ही उससे बोलते हैं। अगर कभी–कभार टीवी खुला नहीं होता तो वो आती है, बाहर से ही टीवी देखती है, और दूसरी नज़र हम पर देखती है। नज़रों से कुछ सवाल छोड़ जाती है।

इस लेख पर कंप्यूघर के साथियों की सोच, उनकी टिप्पणियाँ, उनके अनुभव, अपने बीते समय को याद करना

सूरज राय नीलोफ़र के लेख में कुछ बातें ऐसी हैं जो मुझे बहुत अच्छी लगीं। जैसे दुनिया में आने से पहले ही हम रिश्तों से लदे होते हैं। पर उन रिश्तों को बनाना, बिगाड़ना, उनसे जूझना या समझ कर भी न समझ पाना। हर रिश्ते में कुछ न कुछ बहता है, और कुछ ठहर जाता है। इस लाइन में बहुत कुछ छिपा है, जो शायद कुछ दिखाता है। जो रिश्ता हम बनाते हैं, या जिस रिश्ते को हम चाहते हैं, उसमें जायज़ या नाजायज़ जैसी कोई चीज़ नहीं होती। ज़िन्दगी रिश्तों का नाम है, जिसका कोई दायरा नहीं है। जो अहसास पैदा करता है, जिनके कारण दूरियाँ या खिंचाव आते हैं। इन सबके बीच में हम ठहर जाते हैं।

नसरीन अभी कुछ महीने पहले हमारे घर में कलर टीवी आया था। वो इसलिए, क्योंकि उस टाइम ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी पर स्टार प्लस का आना बंद हो गया था। और अम्मी को स्टार प्लस के सारे सीरियल अच्छे लगते थे। इसलिए एक दिन अम्मी कलर टीवी लेकर आ गईं। उस कलर टीवी को देखकर घर में सभी ख़ुश थे, क्योंकि पहली बार हमारे घर में कलर टीवी आया था।

हमारे घर में एक पड़ोसन का आना–जाना रहता था। उनका नाम सरफ़राज़ था। ज़्यादातर सरफ़राज़ बाजी हमारे घर में ही रहती थीं, और जब हमारे घर में कलर टीवी आया तो उनका घर में आना–जाना और भी बढ़ गया। हमारी अम्मी उनको घर की हर बात बता देती थीं। और वो भी अम्मी को अपनी बात बतातीं थीं। वो अम्मी को अपनी बहन मानती थीं। वो जब टीवी देखने आतीं थीं, तो वो अपनी मर्ज़ी से कहीं भी लगवा लेती थीं। एक दिन मेरी छोटी बहन, जिसको प्यार से नन्हीं कहते हैं, घर में टीवी पर सीरियल देख रही थी। सरफ़राज़ बाजी घर पर आकर बैठ गईं और नन्हीं से कहने लगीं, "फ़िल्म पर लगा ले"। लेकिन उस टाइम उसके मतलब का सीरियल आ रहा था। उसने नहीं लगाया। वो नन्हीं को भला–बुरा कहने लगीं, और जब अम्मी नानी के घर से आईं तो अम्मी से शिकायत करने आ गईं। जब नन्हीं ने अम्मी से कहा, ये मुझको बुरा–बुरा कह रहीं थीं", तो अम्मी ने नन्हीं को ही डाँटा। सरफ़राज़ बाजी शिकायत करके घर से जाते हुए ये कहने लगीं, "तुम्हारी ये लड़की बहुत ज़ुबान–दराज़ हो गई है। ऐसी लड़की को तो ज़हर देकर मार दो"। ये सुनकर मेरी बड़ी बहन कहने

लगी, "तुम अपनी बेटी को ज़हर देकर मार दो"। जब अपनी बेटी की बारी आई तो वो लड़ने लगीं। अम्मी ने मेरी बड़ी बहन को चुप कराया और सरफ़राज़ बाजी भी लड़ कर चली गईं। कुछ महीनों तक उन्होंने हमारे घर में नहीं झाँका। उसके थोड़े दिनों बाद अम्मी ने उनको बुलवाया और वो हमारे घर आ गईं। काफ़ी देर तक बातें कीं। फिर से उनका हमारे घर आना–जाना होने लगा और वो अब भी कभी–कभी आ जाती हैं हमारे घर में टीवी देखने, जब उनका टीवी ख़राब हो जाता है।

नसीम बानो टीवी से घर अच्छा लगता है। क्योंकि उस के बंद होने के बावजूद भी घर में बहुत कुछ लगता है। मैं अपनी मुन्नी बाजी के घर टीवी देखने जाती थी, सिर्फ़ नाटक की वजह से। मुझे स्टार प्लस के कोई भी नाटक अच्छे नहीं लगते थे। लेकिन जब लड़कियों और अपनी बाजी के मुँह से नाटक की स्टोरी सुनती, तो मेरा भी दिल करता था। मैं अपनी मुन्नी बाजी के घर सात बजे से नौ बजे तक नाटक देखती थी। शुरु–शुरु में तो मैं उनके घर में खड़े–खड़े नाटक देखती। वो लोग मुझ से बहुत कहते थे बैठने के लिए। लेकिन मैं बैठती नहीं थी, क्योंकि मुझे बहुत अजीब–सा लगता था दूसरों के घर जाकर टीवी देखना। उनका टीवी ब्लैक एण्ड व्हाइट है। वो लोग खिसियाते नहीं थे, क्योंकि मैं अकेली उनके यहाँ टीवी देखने जाती थी।

हमेशा नाटक ऐसे सीन पर ख़त्म होता कि दिल चाहता अगले दिन जाकर आगे की स्टोरी और जानने को। मेरा आना–जाना बहुत ज़्यादा शुरु हुआ। अब मुझे वहाँ पर कभी दस, साढ़े दस बज जाते, क्योंकि एक सीरियल ख़त्म होने के बाद दूसरा सीरियल भी मैं देखने लगी थी। उनके घर जाकर उनके तख़्त पर ख़ुद ही, उनके बिना कहे बैठ जाती, क्योंकि अब मेरी भी झिझक टूट गई थी। इतनी देर हो जाती कि मैं उनसे और उनकी लड़कियों से फ़ालतू बातें नहीं करती। नाटक देखकर सीधे अपने घर आ जाती। इतनी–इतनी देर में घर आने पर अम्मी मुझे बहुत डाँटतीं और खिसियातीं। मैं एक या दो दिन जाना बंद कर देती, फिर दोबारा जाना शुरु कर देती।।

अब मैंने उनके घर जाना बंद कर दिया। क्योंकि अब हमारी तरफ़ ही आगे वाली गली में एक घर में ऊपर छत पर टीवी रखा रहता है। वो लोग कौन हैं, मैं नहीं जानती। बाजी ख़ाला के घर टीवी देखने जाती थीं। अब वो भी नहीं जातीं। जिनकी छत पर टीवी रखा है, वो कलर टीवी है। छत ऊँची है, इस कारण टीवी की आवाज़ और तस्वीर

साफ़ दिखाई और सुनाई देते हैं। तो मैं कलर टीवी को छोड़ कर उस ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी पर नाटक क्यों देखूँ?

शहाना कुरेशी दो–तीन महीने पहले हमारे घर का टीवी ख़राब हो गया था। शबाना बाजी ने कहा, "मैं अब इस टीवी को ठीक नहीं करवाऊँगी। नया टीवी लेंगे"। नए टीवी के चक्कर में एक महीना बीता। फिर दूसरा महीना। इसी तरह तीन महीने बीत गए। लेकिन टीवी नहीं आया। वजह थे पैसे। इसी दौरान मेरा भाँजा ओसामा एक बार अपनी अम्मी, यानी शबाना बाजी के साथ, उनकी सहेली के घर गया। वहाँ उसने टीवी देखा और अपनी अम्मी की सहेली से कहा, "आपके टीवी पर 'सोनपरी' आता है? 'शाका लाका बूम–बूम' आता है? मुझे देखना है"। वहाँ उसने बहुत सुख से टीवी देखा। जब वो घर वापस आया तो शबाना बाजी ने अपनी सहेली के घर के टीवी के बारे में बातें कीं। फिर कहने लगीं, "इसको इतना शौक़ है टीवी का! और तो और, टीवी के नाटक के नाम भी पता हैं"। ओसामा की उम्र अभी तीन साल, छः महीने है।

अभी एक महीने पहले ही हमारे घर टीवी आया है। नया नहीं आया, वही पुराना टीवी ठीक करवाया है। इन दिनों ओसामा अपनी पसंद के चैनल देखता है। रिमोट अपने हाथों में रखता है। जब किसी सीरियल का एंड देखता है तो उसका नाम लेकर पूछता है, "ये कब आएगा?" इस पर मैं और शबाना आपस में कहते हैं, "इस तरह ये कब पढ़ेगा? स्कूल जाने की उम्र हो रही है। ऐसा करते हैं, केबल ही हटा देते हैं"। अब लगता है जब टीवी नहीं था, तब ही बेहतर था। इस टीवी की वजह से मैं अपनी पसंद की ग़जलें नहीं सुन पाती, न ही अपने पसंद के गाने। कभी–कभी लगता है इस टीवी की वजह से बहुत कुछ छूट रहा है। बस टीवी होता है, और उस में चलते–फिरते लोग। उसमें ज़िन्दा, और मरते लोग। कई परिवारों की कहानियाँ जो कहीं–कहीं, कभी–कभी लगने लगतीं हैं अपनी–सी।

बॉबी ख़ान नीलोफ़र जी का लेख सुनते समय मेरे दिमाग़ में एक अनजानी–सी तस्वीर उभरी। जिसे मैं जानती भी हूँ और नहीं भी। ये अनजानी–सी तस्वीर मेरी आँखों में घूमने लगी। लाल रिबन से दो चोटी बाँधे, आँखों से अंदर आने के लिए मना करना और रोज़ टीवी देखने आना। ऐसा लगा जैसे मैं इसे कुछ हद तक जानती हूँ। वो ऐसे, कि एक लड़की है, जो ज़ेबून ख़ाला की तरफ़ से आती है, गोद में तीन–चार महीने

का बच्चा लेकर, और अकसर हमारी तख़्त वाली दीवार से कमर लगाकर बैठ जाती है। जब भी वो लड़की अपनी बहन को लेकर आती है, तो मेरी छोटी बहन कहती है, "ओरी ओ! तू अपनी छोटी बहन को लेकर मत आया कर। एक तो इतनी दुबली–पतली है, देख कर डर लगता है। ऊपर से रोती रहती है"।

ये लड़की भी दो चोटी बाँधती है, शरीर में दुबली है, और सिर पर दुपट्टा ओढ़े रहती है। नीलोफ़र का लेख सुन कर मेरे दिमाग़ में दो तस्वीरें घूम रही थीं। एक उस लड़की की, जो रोज़ उसके घर टीवी देखने आती है, और एक इस अनजानी–सी लड़की की, जिसे मैं जानती हूँ।

मासूमा अंसारी नीलोफ़र ने बताया कि उसे इस लड़की को देखकर गुस्सा नहीं आता। पर और बच्चों को देखकर तो उसे गुस्सा आता है। औरों को तो मारकर भगा सकती है, मगर उसको कुछ नहीं कह सकती। बल्कि अंदर कमरे में बिठा लेती है। उसके मुताबिक, उस लड़की से उसका एक रिश्ता बन गया है। मगर फिर भी उस रिश्ते में क्या है? प्यार, दया, सिम्पैथी, या कुछ और? अगर नीलोफ़र खुद को उस लड़की की जगह पर, या उन बच्चों की जगह पर रख कर देखे, तो उसे कैसा लगेगा? ख़ैर!

वैसे एक अलग और अनजाना–सा रिश्ता मेरा भी बना है, अभी कुछ महीनों पहले। मगर वहाँ कोई बच्चा नहीं, बल्कि एक बुज़ुर्ग फ़क़ीर है। वो रोज़–रोज़ नहीं आते, कभी–कभी आते हैं। वो भी उस वक़्त, जब मैं सुबह की रोटियाँ डालने बैठती हूँ। फिर भी मुझे गुस्सा नहीं आता। गुस्सा तो मुझे और फ़क़ीरों पर भी नहीं आता। पर उनकी बात अलग है। वो आते हैं तो मैं उन्हें चाय के लिए भी पूछ लेती हूँ, दे भी देती हूँ। कभी–कभार साथ में कुछ ब्रेड या नाश्ता वग़ैरह भी देती हूँ। पिछले एक हफ़्ते से वो नहीं आ रहे, एक अजीब–सा खालीपन लगता है। हर आने वाले फ़क़ीर की आवाज़ मुझे उन्हीं बुज़ुर्ग फ़क़ीर की लगती है!

राबिया नीलोफ़र के लेख में जो लड़की है, मैंने उस लड़की में अपने आपको देखा, जब मैं दस साल की थी। वैसे हमारे घर में शुरु से टीवी था क्योंकि हमारे अब्बू चाहते थे कि उनके बच्चे दूसरों के घर में टीवी देखने नहीं जाएँ। क्योंकि बहुत लोग बच्चों

को अपने घरों से भगा देते हैं। और उस समय हमारी तरफ़ ज़्यादा टीवी भी नहीं थे। इसलिए हमारे अब्बू ने हमारे लिए पहले से ही टीवी ख़रीद रखा था। अगर हमारा टीवी ख़राब हो जाता या फुँक जाता, तो हाथों–हाथ टीवी ठीक करवा लेते थे। इसलिए हमें कहीं टीवी देखने के लिए जाना नहीं पड़ता था।

लेकिन मैं उस दिन अपनी सहेली के घर टीवी देखने गई, वो भी रात के साढ़े दस बजे। अम्मी ने भी कुछ नहीं कहा। अब्बू का काम रात को ही होता था। अम्मी और अब्बू रात–रात को जाग कर काम करते थे, यानी सुबह बिरयानी बनाने की तैयारी करते थे। मैं उस समय शाहिस्ता के घर टीवी देखने इसलिए गई क्योंकि मैं घर में टीवी नहीं देख सकती थी, क्योंकि उस समय रमज़ान चल रहे थे। मुझे 'अलिफ़–लैला' बहुत ही अच्छा लगता था। पर अम्मी ने टीवी बंद कर, मचान पर रख दिया था।

शाहिस्ता की अम्मी बच्चों को भगा देती थीं और कुंडी लगा देती थीं। तब भी उनके घर में बहुत से लोग टीवी देखने आते थे। वे बच्चे नहीं, बड़े थे। सबको वो सीरियल बहुत अच्छा लगता था। शायद इसलिए कि उस समय कोई और जादुई सीरियल नहीं चलते थे। इसलिए कोई भी उस सीरियल का एक भी एपीसोड नहीं छोड़ता था।

शाहिस्ता की अम्मी किसी भी बच्चे को अपने घर में टीवी नहीं देखने देतीं थीं। लेकिन मेरी सहेली शाहिस्ता मुझे पहले से ही अपने घर में बुला लेती थी, और अपने घर के पलंग के नीचे छुपा देती थी। जब उसकी अम्मी को पता चलता, तो मुझे बातें सुनातीं। मैं उनकी कोई बात नहीं सुनती थी, बल्कि टीवी देखती रहती थी। तभी उसके पापा मुझ से कहते, "बैठ जाओ। सीरियल देख कर जाना"। मैं इसी तरह रोज़ उसके घर टीवी देखने जाती थी। नीलोफ़र की कहानी सुनकर मेरा उस लड़की से साथ एक रिश्ता बन गया है, टीवी के ज़रिए। लेकिन मैंने कभी नहीं सोचा कि वह मुझे क्यों भगातीं थीं। शायद उनके साथ मेरा रिश्ता नहीं बना था, टीवी के ज़रिए। इसलिए वह मुझसे बहुत चिढ़ती थीं और मुझ पर बहुत चिल्लाती थीं। लेकिन शाहिस्ता के पापा के साथ मेरा रिश्ता बन गया था, इसलिए मुझे टीवी देखने के लिए रोकते नहीं थे। शायद वही रिश्ता, जो नीलोफ़र और उस लड़की के बीच था, जिसकी वजह से वो लड़की नीलोफ़र को अच्छी लगने लगी थी!

सुल्ताना मुझे इस लेख में ये लग रहा था कि शायद इसके घर में टीवी नहीं होगा, या फिर इसको दूसरों के घर में टीवी देखना अच्छा लगता होगा। क्योंकि जब पहले हमारे घर में टीवी नहीं था, तो मैं अपनी पड़ोसन नसीमा चाची के घर टीवी देखने जाती थी। पर मैं उस लड़की की तरह इतनी देर तक टीवी नहीं देखती थी। मुझे आठ या साढ़े आठ तक नींद आ जाती थी। कभी नई फ़िल्म आती थी, और मैं नौ बजे तक देखती थी, तो अम्मी मुझे सोने से लिए बुला लेतीं थीं।

जब हमारे घर में टीवी आया, फिर भी मैं उनके घर टीवी देखने जाती थी। क्योंकि उनका पूरा परिवार काम करके टीवी देखने बैठ जाता था, और मुझे भरा–भरा घर अच्छा लगता था। अगर फ़िल्म में कोई हँसी का सीन आता, तो सब के साथ हँसने में अच्छा लगता था। चाहे हँसी की बात न हो, तब भी कोई हँसता तो उसकी हँसी पर हँसी आती। मैं अब भी कभी–कभार उनके घर में टीवी देखती हूँ, क्योंकि दूसरों के साथ हमारा कोई रिश्ता बन जाता है जो हमें पता नहीं चलता। मुझे घर में कोई कुछ कह देता है तो मुझे उनकी बातों पर गुस्सा आ जाता है। पर दूसरों की बातों पर नहीं। शायद मेरी तरह उस लड़की का भी कोई रिश्ता बन गया हो।

मुझे नीलोफ़र बाजी की अम्मी का ये कहना अच्छा लगा कि पता नहीं कैसी अम्माएँ हैं, कि अपनी लड़कियों की इतनी रात तक कोई ख़बर नहीं लेतीं। अगर कोई किसी के साथ घूमता है या बोलता है, तो दूसरे इंसान को अजीब–सा फ़ील होता है और वो पूछना चाहता है कि तुम्हारा इसके साथ क्या रिश्ता है? तो हम उस रिश्ते का नाम एकदम नहीं, बल्कि कुछ न कुछ सोच कर बताते हैं। अलग–अलग इंसानों के साथ हमारा ऐसा रिश्ता भी बनता है जिसका कोई नाम नहीं होता!

नीलोफ़र मैंने जब ये लेख सुनाया तो सब चुप थे और सुन रहे थे। कमरे में मेरी और पंखे की आवाज़ थी, बाहर से हल्की बच्चों की आवाज़ें आ रही थीं। जब लेख ख़त्म हो गया, तो सब चुप थे। मैंने सब से पूछा, "क्या लगा?" थोड़ी देर बाद सब अपने टीवी के एक्पीरियंस बताने लगे। काफ़ी लोगों ने मुझसे कई सवाल भी किए। फिर टीवी के क़िस्से शुरु हो गए। मेरे मन में लोगों के प्रति टीवी को लेकर जो लावा था, वो फूटने लगा। काफ़ी बातचीत के बाद सब कुछ न कुछ लिख रहे हैं। कुछ धड़ाधड़

पेन चला रहे हैं, तो कुछ सोच रहे हैं। कमरे में पंखे की आवाज़ काफ़ी तेज़ है। बॉबी जी तो कुर्सी पर बैठी चली जा रहीं हैं। मनोज और सूरज कॉपी के बारे में बात कर रहे हैं!

एक अधूरी सोच

यशोदा

सुनहरी शाम का वक़्त था। बादलों ने आसमान को घेर रखा था। बादलों के बीच से झाँकता लाल–लाल सूरज बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा था। मैं आसमान में उड़ती रंग–बिरंगी पतंगों को देखते हुए आगे बढ़ता चला जा रहा था। सड़क पर सोफ़ता था। अचानक मेरे कानों में बहुत सारी चहल–क़दमी की आवाज़ें दस्तक देने लगीं।

मैंने नज़र उठाकर देखा तो ये फ़ौजियों के कैम्प का एक जत्था था, जो परेड करता हुआ आगे निकल गया। मैं अकेला और ख़ामोश, रास्ते के पत्थरों को ठोकर मारता हुआ घर की तरफ़ बढ़ने लगा। शाम हाथों से छुटी जा रही थी। पेड़ों की घनी छाँव और भी गहराने लगी थी। बारिश झूम के होने की वजह से पिछली सड़क पर पानी भर गया था, जिसमें मेंढ़क टर्र–टर्र का स्वर उठाए हुए थे। ऐसा नहीं था कि सड़क पर सिर्फ़ मैं ही चल रहा था। मेरे साथ और भी राह–गुज़र थे, लेकिन उन्हें देखने या जानने का मेरा मूड नहीं था। मैं घर के नज़दीक पहुँच चुका था। मैंने लोहे के दरवाज़े को चाबी दी और काँधे से धक्का देते हुए उसे खोला, जिसकी वजह से मेरे सफ़ेद कुर्ते पर ज़ंग का निशान पड़ गया। मैं काँधे को अपने बाएँ हाथ से झाड़ता हुआ अंदर आ गया। मैंने दरवाज़े को झटके से बंद किया, और चटखनी लगा दी...

सब की सोच

अज़रा तबस्सुम आज सुबह मैं रोज़ के समय पर ही उठा। उठकर माँ को चाय के लिए कहता हुआ बाथरूम की ओर गया। बाथरूम में बैठा था, पर साथ में पूरे दिन की प्लानिंग सोच रहा था। आज क्या करना है? आठ बजे तक स्कूल में पहुँच कर कौन–कौन से लेसन पढ़ाने हैं? दोपहर के बाद ट्यूशन पढ़ाने जाऊँ, या नहीं? आज

शनिवार है। क्यों न शमा के साथ जाकर 'डरना मना है' फ़िल्म देखी जाए? कल ही लगी है। सुना है अच्छी भी है। बाथरूम से बाहर निकल, अपने तहमत को उपर की ओर करके कमर पर कसा, और कॉलगेट लेकर ब्रश करना शुरु कर दिया। पीछे से माँ की आवाज़ आई, "बेटा, आज नाश्ते में क्या लोगे?"
"जो चाहे बना दे। आमलेट होगा तो चलेगा"।
ब्रश करते ही मैंने अपनी शेविंग का सामान निकाला और चाय का घूँट लेते हुए शेविंग स्टार्ट की। शेविंग करते हुए मैंने अपने नहाने का भी इंतजाम किया ओर नहाकर, नाश्ता करके, अपना बैग चैक करता हुआ घर से निकला। स्कूल में आज दिन बहुत सुस्त था। स्कूल से निकलकर मैं मनोज के घर पहुँचा। वो चौदह साल का बच्चा है और आठवीं क्लास में पढ़ता है। मैं वहाँ पहुँचा तो आज मनोज मार्किट गया हुआ था, अपनी कुछ किताबें लेने के लिए। मैंने उनकी मम्मी से कहा, "वो शाम को भी जा सकता था"। वो बोलीं, "लेकिन नया कोर्स होने की वजह से किताबें ख़त्म होने का डर था। इसलिए उसे आज ही नई सड़क जाना पड़ा। अभी आधे घण्टे में आ जायेगा"।

ये बच्चा पढ़ने में बहुत अच्छा है, और स्वभाव से भी शांत है। पर उसे कभी–कभी बहुत ज़ोर से गुस्सा आता है, जब उसे अपनी ज़रूरत की चीज़ नहीं मिलती। मैंने सोचा उसका आधे घण्टे से ज़्यादा इंतज़ार नहीं करुँगा। छः से नौ फ़िल्म भी जाना है। मुझे वहाँ सवा दो से तीन बज चुके थे। अब मैं वहाँ बैठकर पिछली मैगज़ीन पढ़ते हुए और इंतज़ार नहीं कर सकता था। मैं उठा, सोमवार का आने का कहकर निकल गया। रास्ते में मैंने कई लोगों से दो लड़कों को पिटते हुए देखा, जिन्हें देख कर मेरे मन में बिना सोचे–समझे ही कुछ सवाल पैदा होने लगे।

बॉबी ख़ान जो सड़क पर राह–गुज़र चल रहे थे, उन में मैं भी था। बस फ़र्क़ इतना था कि रास्ते पर पड़े पत्थरों और चल रहे लोगों को अनदेखा कर रहा था। अब आप ये जानने की कोशिश करेंगे कि मैं कौन हूँ। तो मैं आप की जानकारी के लिए बता दूँ, मैं एक आम शक्ल–ओ–सूरत का मालिक हूँ। दिखने में न लम्बा, न ठिगना। शरीर में न हल्का, न भारी। काली चैक की शर्ट और सफ़ेद पैंट, आँखों का रंग नीला। हाथ में पीतल का कड़ा। बाल आधी माँग के बना रखे हैं। आगे के बाल थोड़े से सुनहरी हैं। वो इसलिए कि डाई करवाए हैं। मैं उस सड़क पर हूँ जिस पर पानी भरा है। मेरे क़दम अपनी मंज़िल की ही तरफ़ हैं, मगर मेरा ध्यान और सोच उस पतंग पर हैं जो खुली

हवाओं के भँवर में फंसी उड़ रही है। जैसे मैं कभी सोचों के बीच एक सोच पर आकर टिक जाता हूँ, वो पतंग भी हवा में उसी तरह टिकी है। अरे, मुझे ठोकर लग गई! और मेरी सोच वहाँ जाकर बिखरी जहाँ कुछ भी नहीं था, सिवाय गीली रेत के। मैंने सामने देखा, कुछ लोग चले आ रहे थे। उस गीली रेत पर पैरों के निशान मुझे देखने में अच्छे लग रहे थे। मैं वहीं मुड़ कर खड़ा हो, अपने पैरों के निशान देखता रहा। मेरे सामने से वो राह–गुज़र कब गुज़र गए, पता ही नहीं चला।

बबली राय अपनी सोच में झूमते हुए जैसे ही समीर ने सामने देखा, तो उसका घर आ गया था। उसने स्टाइल में कंधे से दरवाज़ा खोला। दरवाज़ा तो खुल गया, पर साथ में उसकी शर्ट पर भी ज़ंग का निशान लग गया था। वो उसकी लाइट आसमानी शर्ट पर चाँद की तरह चमक रहा था। चाँद पर चमक के साथ–साथ बदनुमा दाग़ भी होता है। वो दाग़ को नज़र–अंदाज़ करता हुआ घर में घुसा, पर घर के अंधेरे को देखकर अपनी सोच को भूल, वो अपनी अम्मी को खोजने लगा। पर अम्मी उसे नहीं मिलीं। वो वापस बाहर आना चाहता था। पर वो टेबल से टकरा गया और उसकी घड़ी टूट गई। घड़ी के गिरते ही टूटने की आवाज़ आई। ये सुनते ही दस साल की छोटी बच्ची दौड़ती हुई आई और बोली, "भाई जान, आपने घड़ी तोड़ दी! मैं अभी अम्मी को बुलाकर लाती हूँ"। वो लड़की जवाब सुने बिना ही अंदर चली गई। समीर कमरे से बाहर आकर दरवाज़े के पास खड़ा हो गया। उसे अपनी शर्ट पर लगा दाग़ याद आया। उसने सोचा, "बेकार में स्टाइल दिखाकर अपने अब्बूजी की शर्ट को दाग़दार कर दिया। और अब घड़ी भी तोड़ दी। आज तो लगता है मंगल मुझ पर भारी है। अब्बू की पिटाई और अम्मी की डाँट से अल्लाह ही बचाए"।

मासूमा अंसारी मैंने यशोदा का लेख अभी तो नहीं सुना, पर पहले एक बार पढ़ा ज़रूर था, जब वो इसे अपनी कल्पना से काग़ज़ पर उभारने की जद्दोज़हद में लगी हुई थी। उसी कहानी की एक लाइन में उसने लिखा था कि वो आदमी रास्ते में फ़ौजियों की लंबी कतार को जाते हुए देखता है। उस लाइन को पढ़कर दिमाग़ में जैसे फ़्लैश–सा हुआ। फिर मुझे कश्मीर सीरियल की स्टार्टिंग का एक सीन याद आने लगा, जिस में सीरियल का एक्टर, आमिर, वहाँ से गुज़रते हुए फ़ौजियों को बड़ी चाह–भरी निगाहों से देखता है।

इस कहानी का हीरो मुझे काफ़ी गंभीर और ग़मज़दा–सा लगा। उसका अकेलापन महसूस करके मुझे ऐसे लगा जैसे कि कहीं उसके घरवालों को आंतकवादियों ने मार तो नहीं डाला? और कहीं वो उनसे बदला लेने का तो सोच नहीं रहा? क्योंकि मुझे इस कहानी को पढ़ने पर कश्मीर की ख़ूबसूरत, मगर ग़मग़ीन और ख़ौफ़ज़दा, वादियाँ ही याद आ रही थीं।

नसरीन आजकल जब मैं शाम में छत पर चढ़ती हूँ, तो मुझे सभी छत पर चढ़े नज़र आते हैं। वो इसलिए कि वो पतंग उड़ा रहे होते हैं। मैं उन बच्चों को पतंग उड़ाते देखती हूँ तो मुझे उजर की बार–बार याद आती है। उसे भी कुछ दिनों से पतंग उड़ाने का शौक़ हो गया था। पतंग के लिए वो काफ़ी दिनों से मदरसे नहीं जा रहा था। उसे मदरसे में दाख़िल हुए एक महीना ही हुआ था। जब सुबह उसकी अम्मी उसे मदरसे जाने के लिए कहतीं, तो वो बहुत रोता। ये बहाना सामने रखता कि तबीयत ख़राब हो रही है। इस वजह से उसकी अम्मी मदरसे की छुट्टी करवा लेतीं। ग्यारह या बारह बजे तक उसकी तबीयत ठीक हो जाती, और वो अपने अब्बू से दो रुपए लेकर जल्दी से चार पतंग लेकर आता। फिर, चाहे जितनी भी तेज़ धूप हो, हमारी छत पर जाकर पतंग उड़ाना शुरु कर देता। अगर कोई उसकी पतंग पकड़ लेता, तो वो उसे बहुत–बहुत बातें सुनाता और उससे लड़ने लगता। ये लेख सुनकर जब पतंगों का क़िस्सा आया, तो मुझे अपने उजर की पतंग याद आई। उजर अभी तीन या साढ़े तीन साल का है, लेकिन लड़ने में नम्बर एक है।

नसीम बानो मैं दरवाज़ा बंद करके अंदर आया तो सामने से मेरी माँ, जो बहुत बूढ़ी हैं, आँखों पर चश्मा लगाए, एक लकड़ी के सहारे चलते हुए, मेरी ओर देखती हुई नज़र आईं। वो बोलीं, "बेटा, तूने पान खाना कब से शुरु किया?" उनको आँखों से बहुत कम दिखाई देता है, इस वजह से उनको वो ज़ंग का निशान पान का धब्बा लगा। मैं "नहीं माँ" कहते हुए अपने कमरे की ओर चल दिया। अपने कमरे का दरवाज़ा खोलकर बैड पर लेट गया। एक पल के लिए अपनी आँखें बन्द करके एक काली तस्वीर में कुछ ढूँढने की कोशिश करने लगा। जिसमें मुझे कुछ आराम महसूस हुआ। इस आराम को महसूस करते हुए मैंने एक करवट ली। तभी ख़ूब ज़ोर की एक आवाज़ आई, "कट गई! कट गई!" अपनी आँखें खोलीं तो सामने एक खिड़की पाई। ये मेरी खिड़की, जिससे मेरी दोस्ती है। मैं इससे अपनी थकान दूर करता हूँ। मैं खिड़की की

तरफ़ बढ़ा और उसके एक दरवाज़े पर हाथ, और एक हाथ कमर पर रख कर खड़ा हो गया। खिड़की से बाहर थोड़ा सिर निकाला और आँखें आसमान की तरफ़ दौड़ाईं। बहुत सारी रंग–बिरंगी पतंगें नज़र आईं। ऐसा लग रहा था कि आज आसमान ने इन्हें दावत दी है और ये सारी पतंगे डाँस कर रही हैं। और जो पतंग थक जाती है, वो हार कर नीचे ज़मीन पर लहराती हुई गिर जाती है। मुझे ये सब देखकर अपने दोस्त विनीत की याद आने लगी, जिसकी एक बस से टक्कर में मौत हो गई थी।

शहाना कुरेशी कभी–कभी ऐसा होता है कि हम रास्ते पर चल रहे होते हैं और अपने आस–पास के माहौल को अपनी आँखों से देखते ज़रूर हैं, लेकिन वहाँ की आवाज़ें सुन नहीं पाते। बस चलते चले जाते हैं। अभी एक हफ़्ते पहले की बात है। मैं अपने सर से मिलने गई थी। पिछले दो महीनों से मैं उनके पास नहीं जा रही थी। उस दिन मेरे पास टाइम था, सो मैंने ज़ाकिर हुसैन कॉलिज के पास से बस ली। ज़ाकिर हुसैन से दरिया गंज तक का किराया दो रुपए लगता है। मैंने अपने काले बैग से दो रुपए निकाले और टिकिट लिया। बस में भीड़ होने की वजह से मैं बस के पिछले गेट पर ही खड़ी हो गई। शाम के छः बजे की वजह से गर्मी की शिद्दत में काफ़ी हद तक कमी महसूस हो रही थी। सुबह बारिश भी तो अपने पूरे रंग में बरसी थी। लेकिन उसके बाद सूरज ने अपनी शक्ल आसमान में चमकाकर फिर से हमें ये अहसास कराया, "दिल्ली के लोगों, अभी गर्मी है, ये भूल न जाना"। मैं बस की भीड़ को देखती, तो कभी बाहर। दस मिनट के सफ़र के बाद मैं बस से उतरी। एक गली को पैदल चलते हुए पार किया। मैं सर के सेन्टर जा पहुँची। वहाँ आठ साल से लेकर पंद्रह साल तक के बच्चे थे। मैंने सर को सलाम किया। उन्होंने जवाब के साथ बैठने को कहा। मैं बैठ गई। पिछली ख़ैर–ख़ैरियत एक–दूसरे से पूछी। उन्होंने इस दौरान एक बच्चे का काम भी चैक किया। इसके बाद उन्होंने मुझ से कहा, "कल मैंने तुम्हें सुंई वालान में देखा था। दो–तीन बार आवाज़ भी दी, लेकिन तुम ने नहीं सुना"। इस पर मैंने अपने दिमाग़ पर ज़ोर दिया। फिर सर के कहा, "हाँ, कल मैं अपने टेलर के पास जा रही थी। लेकिन मैंने आप की आवाज़ नहीं सुनी, न ही आप को देखा"। हो सकता है जब हम कहीं से कहीं जाने के लिए निकलते हैं, तब हमारी सोच में सिर्फ़ वो ही जगह होती है जहाँ हमें जल्द से जल्द पहुँचना है। बाक़ी का रास्ता हम देखते हैं, उस पर चलते हैं, लेकिन उस रास्ते पर चलते लोगों को जानने या पहचानने की ज़रूरत नहीं समझते। चलते–चलते उसी जगह को देखते हैं जहाँ हमें जाना होता है। जैसे यशोदा की कुछ

लाइनों का व्यक्ति, जिसे अपने घर जल्दी से पहुँचना है। हो सकता है उसका कोई अपना बीमार हो। उसे उसके ऑफ़िस में पता लगा हो और वो जल्द से जल्द घर आकर अपने घर के कुछ अधूरे काम पूरे करके उसके पास तसल्ली से उसकी ख़ैरियत पूछने जाना चाहता हो।

सूरज राय एक पतंग, जो कि आसमान में उड़ना चाहती है। उसको एक लम्बी डोर और उड़ाने वाले हाथ चाहिएँ। उसी तरह हमें जीने के लिए सोच में एकाग्रता और सही साथी चाहिएँ। पतंग तो हवा के रुख पर मुड़ जाती है। मगर हमारी ज़िन्दगी में तो हर तरफ़ हवा है। फ़र्क़ ये है कि उस में धूल तो है, पर ठंडक नहीं।

सुल्ताना मुझे लेख में ये पता नहीं चल रहा कि ये किस पर लिखा गया है। पर मुझे इस में ये अच्छा लगा कि वो आसमान में उड़ती रंग–बिरंगी पतंगों को देख रहा था, डूबता हुआ लाल सूरज देख रहा था। जब उसके कुर्ते पर ज़ंग लगा तो वो क्या सोच रहा था? कुछ न कुछ तो बड़बड़ाया होगा। उसने जब फ़ौजी जाते हुए देखे, तो उसने क्या सोचा? मुझे इस में ये लग रहा है कि जब हम अपनी सोच में डूबे होते हैं तो आसपास की आवाज़ को नज़र–अंदाज़ कर देते हैं, माहौल को समझ नहीं पाते।

एक बार मेरे साथ भी ऐसा हुआ था। मैं स्कूल से अपने घर आ रही थी। जो लड़की मेरे साथ आती थी, उसके साथ मेरा एक ही बात पर झगड़ा हुआ था। मैं प्रेयर की लाइन में बैठी थी। वो लड़की मेरे आगे बैठी थी। उन दिनों हमारे स्कूल में बहुत सख़्ती हो रही थी। मेरी सहेली फ़ौज़िया घर से रंग–बिरंगे रबड़ बैंड लगा कर आती थी, और स्कूल में आकर काला रबड़ बैंड लगाया करती थी। वो उस दिन व्हाइट ड्रैस पहन कर आई थी। हमारे स्कूल के प्रीफ़ैक्ट व्हाइट ड्रेस वाली लड़कियों को पनिशमेंट देने के लिए बाहर निकाल रही थीं। तो फ़ौज़िया ने जाते समय अपना रबड़ बैंड मेरे हाथ में दे दिया। मेरे आगे वाली लड़की बोली, "अच्छा, अभी मैं बाजी से कहती हूँ"। मैंने कहा, "हाँ कह दो। बाजी मुझे कुछ नहीं कहेंगी क्योंकि मैंने दो चुटियाँ बाँधी हुई हैं"। जब भी बाजी मुझे देखतीं, मैं अपने हाथ का रबड़ बैंड छुपा लेती। फिर वो बोली, "अच्छा...!" वो लड़की बार–बार मुझे देखे जा रही थी। मैंने गुस्से में आकर कहा, "हाँ, चल कह दे"। तो बाजी ने मुझे बाहर निकाला और डाँटा। मैं अपनी क्लास में चली गई। जो मुझे टोके जा रही थी, उस लड़की का नाम निशांत था। वो मुझे देख कर हँसने लगी।

मैंने गुस्से में आकर कहा, "मुझसे फ़ालतू मत बोला कर। जब देखो फ़ालतू में चेप होती रहती है"।

गुस्से में आकर बोली, "अब तुम मेरे साथ घर नहीं चलना"। वो बोली, "मैं तेरे घर थोड़े ही जाती हूँ। मैं तो अपने घर जाती हूँ। जब देखो घर की धौंस देती रहती है"। जब छुट्टी हुई तो मैं उसकी बातें सोचती हुई जा रही थी। मुझे कोई आवाज़ दे रहा था। पर मुझे पता नहीं चला। ये भी नहीं पता चला कि मैं कब घर पहुँच गई।

जब मैं अगले दिन स्कूल गई तो आर्शी बोली, "मैंने तुझे कितनी आवाज़ें दीं थीं। तू ने नहीं सुना। क्या तू कुछ सोचती हुई जा रही थी?" इसी तरह वो भी कुछ न कुछ सोचता हुआ जा रहा था, जो उसने पास की आवाज़ को नहीं सुना।

यशोदा अंदर कच्चे आंगन की चिकनी मिट्टी पानी पड़ने की वजह से बहने लगी थी। मैंने अपनी घिसी हुई आठ नम्बर की कोल्हापुरी चप्पल एक किनारे पर उतार कर रखी। और आँगन में धीरे–धीरे चलने लगा। कोने में झाड़ू रखा था। मैंने कुर्ते की बाँह को ऊपर चढ़ाते हुए झाड़ू उठा लिया और पेड़ के पत्तों को एक तरफ़ इकट्ठा करने लगा। मेरे पैर कीचड़ में लथपथ हो चुके थे। मैंने सारे पत्तों को इकट्ठा कर कूड़ेदान में डाला और बाल्टी में रस्सी बाँधता हुआ पेड़ी पर चढ़ने लगा। ऊपर चढ़कर मैंने बाल्टी को धीरे–से कुएँ में छोड़ दिया, जिसकी आवाज़ चारों तरफ़ गूँज गई, "छपाक!" मैंने बाल्टी को खींचा और हाथ–मुँह धोने लगा। सख़्त–से हाथ जब मेरे चेहरे पर पहुँचे तो मेरे गाल का मस्सा जैसे मेरी उंगलियों में ही थम कर रह गया। उसकी आवाज़ मेरे कानों को चीरकर पार निकलने लगी "ई... बुद्धु! तुम इस मस्से पर ज़्यादा इतराते हो, तभी तो बार–बार तुम्हारी भिंडी जैसी उंगलियाँ इसे सहलाने में लगी रहती हैं"। मैंने जल्दी से मस्से पर से अपनी उंगलियाँ हटाईं।

मेरे आँसू मेरे चेहरे के पानी में मिल रहे थे। कुएँ मैं जैसे उसकी तस्वीर आकार बदलने लगी थी। मैं बहुत तेज़ चिल्लाया, "मैं भूलना चाहता हूँ तुम्हें! प्लीज़ मुझे याद मत आओ"। बाल्टी मेरे हाथ से छूट चुकी थी। मैं जल्दी–से पेड़ी पर से उतरता हुआ नीचे आ गया। बाल्टी कुएँ में बहुत तेज़ गिरी थी, जिसकी वजह से पेड़ के पंछी चीं–चीं करते हुए भागने लगे। मैंने रस्सी से तौलिया लिया और अंदर कमरे में आ गया।